सामाजिक ताने-बाने में भाषा की भूमिका

- बलदेवानन्द सागर

कुछ दिन पहले ही [२१-फरवरी को] 'अन्तर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस' मनाया गया । संयुक्तराष्ट्र ने १७-नवम्बर'१९९९ को इस बारे में निर्णय लिया था । इस दिवस को आयोजित करने का मुख्य उद्देश्य है कि संसार में भाषासम्बन्धी सांस्कृतिक विविधता एवं बहुभाषिकता को व्यापक रूप में स्वीकारा जाय ।

आइये, भाषा की भूमिका और उपयोगिता के बारे में चर्चा करने से पहले हम अपने सामाजिक ताने-बाने को पहचान लें । 'पहचान लें' का प्रयोग किया है क्योंकि अपने समाज की सुव्यवस्थित संरचना को पूरी गहनता के साथ समझने के किए विशेष चिन्तन-अध्ययन की अपेक्षा रहती है ।

न केवल किसी एक समाज के लिए, बल्कि विश्व के सभी समाजों के किए यह एक शाश्वत नियम है कि उस समाज-विशेष का ताना-बाना तैयार करने में उसकी भाषा और विभिन्न बोलियाँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

सामाजिक जीवन के आवश्यक अंग के रूप में भाषा अपरिहार्य है - इस तथ्य को मनुष्य ने लाखों साल पहले पहचानकर उसका निरंतर विकास किया है। भाषा में ही हमारे भाव, जातीयता और प्रांतीयता झलकती है। इस झलक का संबंध व्यक्ति की मानवीय संवेदना और मानसिकता से भी होता है। जिस व्यक्ति के जीवन का उद्देश्य और मानसिकता जिस स्तर की होगी, उसकी भाषा के शब्द और उनके मुख्यार्थ भी उसी स्तर के होंगे। समाज में रहकर

पारस्परिक व्यवहार, व्यापार या लोगों से बातचीत [वाग्-विनिमय] के लिए मनुष्य के पास भाषा ही एकमात्र माध्यम है।

भाषाविज्ञान और समाजशास्त्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मानव समाज के साथ ही भाषा का भी बराबर विकास होता आया है। चूँकि विकास की यह प्रक्रिया निरन्तर गतिशील है अतः मानव-समाज के विकास के साथ-साथ भाषाओं में भी सदा परिवर्तन होता रहता है। सामान्यत: भाषा को वैचारिक आदान-प्रदान का माध्यम कहा जा सकता है। भाषा, अभिव्यक्ति का सर्वाधिक विश्वसनीय माध्यम है। यही नहीं, यह हमारे समाज के निर्माण, विकास, अस्मिता, और सामाजिक व सांस्कृतिक पहचान का भी महत्वपूर्ण साधन है। भाषा के बिना मनुष्य अपूर्ण है और अपने इतिहास और परंपरा से विछिन्न है। हम कह सकते हैं कि भाषा और लिपि हमारे विचारों एवं भावों के प्रकटीकरण के दो अभिन्न पहलू हैं।

'भाष्यते इति भाषा'- जिसे बोला जाए, जिसे समाज में एक-दूसरे को समझने-समझाने में प्रयुक्त किया जाय, लिपि के द्वारा भी जो अन्तर्मन की भावनाओं और हृदय के गहनतम विचारों को प्रकट करने में सक्षम हो, वह 'भाषा', संस्कृत-साहित्य में अनेक नामों से सम्बोधित की जाती है । अमरसिंह द्वारा विरचित 'अमरकोश' में कहा गया है -

'ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती ।'

भाषा को वाणी भी कहते हैं | वाणी या बानी शब्द आते ही हमको सन्त कबीर साहेब का यह दोहा याद आ जाता है -

मीठी बानी बोलिए, मन का आपा खोई ।

औरन को शीतल करें, आपहुं शीतल होय ।।

हमारे महान् ऋषि-मुनि, वैदिक विचारक और तत्त्वदृष्टा महापुरुष इस तथ्य से सुपरिचित थे कि वाणी [भाषा] के व्यवहार के आधार पर ही उस समाज के मान-सम्मान और गौरव की प्रतिष्ठा होती है । भाषा की भूमिका को महाकवि भर्तृहरि अपने 'नीतिशतकम्' में आलंकारिक रूप से बताते हैं -

केयूराः न विभूषयन्ति पुरुषं हाराः न चन्द्रोज्ज्वलाः,

न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृताः मूर्धजाः।

वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते,

क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥

[अर्थात् बाजूबन्द [केयूर] पुरुष को शोभित नहीं करते और न ही चन्द्रमा के समान उज्ज्वल हार, न स्नान, न चन्दन, न फूल और न ही सजे हुए केश ही मनुष्य की शोभा बढ़ाते हैं। केवल सुसंस्कृत और परिष्कृत की हुई एकमात्र वाणी [भाषा] ही उसकी समुचित रीति से शोभा बढ़ाती है। अन्य सभी आभूषण नष्ट हो जाते हैं, वाणी [भाषा] ही सनातन आभूषण है ।

इस संसार के महान् लोकतन्त्र भारत की शिक्षा-व्यवस्था में यदि हम भाषा की भूमिका की बात करें, तो कह सकते हैं कि नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति-२०२० में कक्षा-५ तक की शिक्षा के माध्यम के रूप में घरेलू भाषा, मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा बनाने का निर्णय है। विशेषज्ञों का मानना है कि यह निर्णय राष्ट्र निर्माण में दीर्घकालीन प्रभाव पैदा कर सकता है। मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा में स्कूली शिक्षा प्रदान करना मानव संसाधन विकास की चल रही प्रक्रिया में भारी पारिवर्तन ला सकता है। इस सन्दर्भ में बड़े विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि मातृभाषा सीखने से भविष्य की पीढ़ियों को अपने सामाजिक और सांस्कृतिक ताने-बाने के साथ संबंध बनाने में अवश्यमेव बहूपयोगी और व्यावहारिक सहायता मिलेगी।

बच्चों को मातृभाषा में आरंभिक शिक्षा देने से शिक्षा-पद्धति में शिक्षण-प्रदान सुधर सकता है, यह पद्धति छात्र की भागीदारी बढ़ा सकती है और बच्चों पर आने वाले सभी अतिरिक्त भार को कम कर सकती है । नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इसके लिए अभिसंस्तुति की गई है, यद्यपि इसके लिए नई पुस्तकों, नए शिक्षक, प्रशिक्षण-संसाधन और अधिक धन की आवश्यकता होगी । भारत-जैसे देश में भाषाओं और बोलियों की बहुलता को देखते हुए, यह पद्धति उस क्षेत्रविशेष में एक निर्देश के माध्यम के रूप में प्रयुक्त की जा सकती है।

वैसे भाषा की भूमिका की बात करते समय, मात्र इस संसार की ही नहीं, पूरे ब्रह्मांड की अभिव्यक्ति और वाणी [संस्कृत] की बात न करना समुचित नहीं माना जाएगा । परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के नाम से वैज्ञानिक और दार्शनिक प्रज्ञावाली यह भाषा, न केवल भाषा ही है, यह तो इस महान् भारत को मिला एक अद्भुत ध्वनि-विज्ञान है जिससे आज के ध्वनि-वैज्ञानिक बड़े गौरव से अनुप्रेरित हो रहे हैं । सच में, आने वाला समय ही बताएगा कि सामाजिक संरचना के परिप्रेक्ष्य में हमारी विभिन्न भाषाओं और बोलियों के लिए इस दैवी वाक् ने कितनी महनीय भूमिका निभाई है ।

***

- बलदेवानन्द सागर

अणुप्रैष - baldevanand.sagar@gmail.com